Impact Factor (SJIF): 6.092 E-ISSN: 2583-1615

International Journal of Research in Academic World

Received: 09/February/2023 IJRAW: 2023; 2(3):162-167 Accepted: 20/March/2023

आचार्य नरेन्द्रदेव, समाजवाद और शिक्षा

*[1]डॉ. नवनीत कुमार सिंह

*[1]विभागाध्यक्ष (बी.एड.), शिक्षा विभाग, चन्द्रावती तिवारी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, काशीपुर, उधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड, भारत।

सारांश

आचार्य नरेन्द्रदेव भारत में प्रमुख समाजवादी आन्दोलन के अग्रणी नेता थे एवं उन्हीं की अध्यक्षता में ही समाजवादियों का पहला अखिल भारतीय सम्मेलन सन् 1934 ई0 को पटना में हुआ था। वह एक नैतिक समाजवादी थे। वह समाजवाद को नैतिक धारणा मानते थे तथा नैतिक मूल्यों की प्राथमिकता में उन्हें विश्वास था। आचार्य जी का मानना था कि समाजवाद एक सांस्कृतिक आन्दोलन है, जिसका केन्द्र मानव है और समाजवाद में "मानव सर्वोपरि है"। उनके समाजवादी चिन्तन की रीढ़ मानव और मानवता है। उनके मतानुसार, समाजवाद में व्यक्ति का व्यक्ति द्वारा तथा व्यक्तिसमूह का व्यक्तिसमूह द्वारा शोषण समाप्त होगा, तभी समाजवाद की मर्यादा सुरक्षित रहेगी। आचार्य जी ने शिक्षा जगत को एक नई राह व नया आधार दिया। उनकी शिक्षा का उद्देश्य देश के नवयुवकों को भावी जीवन के लिए तैयार करना है। स्वयं शिक्षक होने के कारण उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक के महत्व को स्वीकार किया। उन्होंने शिक्षकों को उदासीनता, आलस्य और निष्क्रियता का त्याग करने का परामर्श दिया। उनके अनुसार इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी भी शिक्षा पद्धति की सफलता अन्तोगत्वा अध्यापक पर ही निर्भर करती है। वह शिक्षा के विभिन्न चरणों में सामंजस्य के समर्थक थे।

मुख्य शब्दः आचार्य नरेन्द्रदेव, समाजवाद, शिक्षा।

प्रस्तावना

आचार्य नरेन्द्रदेव का जीवन–वृत्तः सुप्रसिद्ध समाजवादी विचारक आचार्य नरेन्द्रदेव हिन्दी और अंग्रेजी दोनों के ही अच्छे वक्ता तथा लेखक थे। उन्हें भारतीय संस्कृति में गहरी रूचि थी। माध्यमिक शिक्षा समिति के अध्यक्ष, लखनऊ व काशी विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में आचार्य जी ने शिक्षा जगत को एक नई राह व नया आधार दिया। नरेन्द्रदेव विचारधारा की दृष्टि से मार्क्सवादी थे। द्वन्द्ववाद व भौतिकवाद के सामान्य सिद्धान्तों का उन्होंने विवेचन किया था। द्वन्द्ववाद के सिद्धान्त और पद्धति को वे स्वीकार करते थे, परन्तु मार्क्सवादी के रूप में भौतिकवाद के सम्पूर्ण दर्शन को सम्भवतः उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। फिर भी वे मार्क्सवाद को भौतिकवादी एकत्ववाद के रूप में मानते थे और गति की सार्वभौमता को स्वीकार करते थे जिसका अर्थ है कि विश्व एक प्रक्रिया है।[1] आचार्य नरेन्द्रदेव सच्चे समाजवादी थे इसलिए उन्हें समाज व मानव से हार्दिक लगाव व प्रेम था। वह समाज को शोषण, उत्पीड़न और विषमताओं से बचाना चाहते थे तथा समाज में फैले मानवीय अत्याचारों के विरूद्ध थे। उन्हें अन्याय करना व सहना दोनों ही पसन्द नहीं था। इस सम्बन्ध में मुकुट बिहारी लाल ने लिखा है कि, "अन्याय करना और अन्याय सहना दोनों ही उन्हें अखरते थे। अन्याय के विरूद्ध क्रान्तिकारी विद्रोह की भावना उनके नैतिक जीवन का आधार थी। सारा जीवन अन्याय का विरोध करने पर भी उनके जीवन में कटुता का अभाव था। उनके शील और सौजन्य में बड़ा आकर्षण था, सभी उस पर मुग्ध थे।"[2]

आचार्य जी ने शिक्षा के उद्देश्य के विषय में लिखा है कि– "शिक्षा का उद्देश्य देश के नवयुवकों को भावी जीवन के लिए तैयार करना है। किन्तु जीवन की परिस्थितियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। अतः नवयुवकों की शिक्षा भी स्थिर जीवन दर्शन पर आधारित नहीं हो सकती है। परिवर्तनशील जगत की आवश्यकता को पूरा करने के

*Corresponding Author: डॉ. नवनीत कुमार सिंह

लिये शिक्षा को गत्यात्मक बनाना होगा।"[3] उसमें आधुनिक विश्व की प्रगति हेतु परिवर्तन आवश्यक है। स्वयं शिक्षक होने के कारण उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक के महत्व को स्वीकार किया। उन्होंने शिक्षकों को उदासीनता, आलस्य और निष्क्रियता का त्याग करने का परामर्श दिया। उनके अनुसार इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी भी शिक्षा पद्धति की सफलता अन्तोगत्वा अध्यापक पर ही निर्भर करती है। आचार्य नरेन्द्रदेव शिक्षा के विभिन्न चरणों में सामंजस्य के समर्थक थे। उन्होंने माध्यमिक शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पर बल दिया ताकि वह प्रारम्भिक और उच्च शिक्षा के मध्य एक सुदृढ़ कड़ी के रूप में कार्य करें। नरेन्द्रदेव जी ने ग्राम विकास के लिए साक्षरता अभियान का समर्थन किया। वे जनसमुदाय की शिक्षा को प्रगति की आवश्यक शर्त मानते थे।[4] आचार्य जी सभी जातियों, वर्गों और सम्प्रदाय के बच्चों हेतु बिना किसी भेदभाव के विद्यालयों द्वारा समान शिक्षा देने के समर्थक थे। उनके विचार से जाति और सम्प्रदाय के नाम पर समर्पित शिक्षा संस्थायें जातिगत, पक्षपात और सम्प्रदायिक वातावरण से दूषित होने के कारण लोकतान्त्रिक शिक्षा के केन्द्र नहीं बन सकते।

बाल्यकाल एवं शिक्षा: आचार्य नरेन्द्रदेव का जन्म 31 अक्टूबर, 1889 ई0 को उत्तर प्रदेश के सीतापुर में एक मध्यम वर्गीय बुद्धिजीवी परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम मुंशी बल्देव प्रसाद तथा माता का नाम जवाहर देवी था। उनके पिता सीतापुर में वकालत करते थे। सन् 1892 ई0 में इनके बाबा की मृत्यु हो गई फलस्वरूप इनके पिता सीतापुर छोड़कर फैजाबाद में आकर वकालत करने लगे। आचार्य नरेन्द्रदेव की प्रारम्भिक शिक्षा उनके घर पर हुई। अपने बाल्यकाल में नरेन्द्रदेव जिन महापुरूषों के सम्पर्क में आये उनमें उनके प्रथम गुरू पं0 कालीदीन अवस्थी, माधव प्रसाद मिश्र, स्वामी रामतीर्थ तथा मदन मोहन मालवीय प्रमुख थे। नरेन्द्रदेव ने अपने संस्मरण में लिखा है कि, "उन्होंने हिन्दी, गणित व भूगोल अवस्थी जी से, बंगला भाषा मिश्र जी से तथा अंग्रेजी अपने पिता के एक सहयोगी से सीखी।" नरेन्द्रदेव के संस्मरण से यह भी ज्ञात होता है कि उन्होंने बाल्यकाल में तुलसीकृत रामायण, महाभारत का हिन्दी अनुवाद, सुर सागर के साथ–साथ अमर–कोश तथा लघु कौमुदी का अध्ययन किया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने बेताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी, चन्द्रकांता संतति के चौबीस खण्ड एक बार दिलचस्पी के साथ पढ़े थे।[5]

नरेन्द्रदेव के बचपन का नाम 'अविनाशी लाल' था, नरेन्द्रदेव नाम माधव प्रसाद मिश्र ने रखा। श्री प्रकाश ने 'आचार्य' शब्द जोड़ा। आचार्य जी की औपचारिक शिक्षा फैजाबाद में ही कक्षा छः से प्रारम्भ हुई। उन्होंने सन् 1904 ई0 में आठवीं तथा सन् 1906 ई0 में हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त नरेन्द्रदेव ने म्योर सेंट्रल स्कूल प्रयाग में प्रवेश लिया। प्रयाग में नरेन्द्रदेव हिन्दू बोर्डिंग हाउस में रहते थे। अब उनके चिन्तन में तेज़ी से परिवर्तन आने लगा। उन्होंने लिखा है कि "इलाहाबाद आने के उपरान्त मेरे विचारों में तेज़ी से परिवर्तन आने लगा। हिन्दू बोर्डिंग हाउस उग्र विचारों का केन्द्र था। मैं वामपंथी विचारधारा में परिवर्तित हो गया।" उस काल में नरेन्द्रदेव पर लोकमान्य तिलक, अरविन्द घोश व लाला हरदयाल का विशेष प्रभाव पड़ा। इन्टरमीडिएट व बी0ए0 की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1913 ई0 में एम0ए0 करने के लिए आचार्य जी ने क्वीन्स कॉलेज, बनारस में इतिहास विषयक "ग्रुप डी" की कक्षा में प्रवेश लिया। यहाँ उन्होंने संस्कृत, पाली तथा पुरातत्व की शिक्षा प्राप्त की तथा पुरातत्व, अलंकार शास्त्र एवं न्याय का अध्ययन किया। आचार्य जी के जीवन में एम0ए0 की ही परीक्षा ऐसी थी जिसमें वे प्रथम श्रेणी नहीं ला सके। इस कारण इच्छा होते हुए भी, पुरातत्व विभाग क्वीन्स कॉलेज में उन्हें अनुसंधान करने के लिए स्थान नहीं मिला। वकालत के प्रति अरूचि रखते हुए भी अपने माता–पिता के आग्रह पर वकालत पढ़ने प्रयाग चले गये तथा सन् 1915 ई0 में एल0एल0बी0 की परीक्षा उत्तीर्ण की और फैजाबाद आकर वकालत प्रारम्भ कर दी।[6]

समाजवादी विचारधारा: आचार्य नरेन्द्रदेव समाजवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक थे तथा भारत में प्रमुख समाजवादी आन्दोलन के अग्रणी नेता थे। डॉ0 वी0पी0 वर्मा ने लिखा है कि, "नरेन्द्रदेव एक नैतिक समाजवादी थे। वह समाजवाद को नैतिक धारणा मानते थे तथा नैतिक मूल्यों की प्राथमिकता में उन्हें विश्वास था। आचार्य जी का मानना था कि समाजवाद एक राजनीतिक आन्दोलन के साथ–साथ एक सांस्कृतिक आन्दोलन भी है, जिसका केन्द्र मानव है और समाजवाद में "मानव सर्वोपरि है"। उनके समाजवादी चिन्तन की रीढ़ मानव और मानवता है।[7] उनके मतानुसार, समाजवाद में व्यक्ति का व्यक्ति द्वारा तथा व्यक्तिसमूह का व्यक्तिसमूह द्वारा शोषण समाप्त होगा, तभी समाजवाद की मर्यादा सुरक्षित रहेगी। उन्होंने बताया कि–"समाजवाद केवल आर्थिक की नहीं, अपितु सांस्कृतिक आन्दोलन भी है। समाजवाद जितना जोर आर्थिक व्यवस्था पर देता है उतना ही जोर समाजवाद वास्तविक मानव संस्कृति पर भी देता है।" 'समाजवाद' नाम का उनका ग्रन्थ भी है वे इतिहास और भारतीय विचारधारा के समाजवादी दृष्टि से व्याख्याता भी थे। समाजवाद के उनके विचार व दर्शन का भारतीय समाज पर प्रभाव था। समाजवादी विचारों और दृष्टिकोण को प्रसारित करने के लिये नरेन्द्रदेव जी ने अपने सम्पादकत्व में 'संघर्ष' नामक एक हिन्दी साप्ताहिक पत्र भी निकाला करते थे। समाजवाद आदि विषयों पर आचार्य जी सारगर्भित लेख लिखते रहते थे।[8] उनकी समाजवादी व राजनीतिक रचनाएँ बहुत मौलिक अथवा गम्भीर नहीं हैं, किन्तु वे ओजपूर्ण तथा प्रसादगुण सम्पन्न हैं।

आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में ही समाजवादियों का पहला अखिल भारतीय सम्मेलन सन् 1934 ई0 को पटना में हुआ था। सन् 1938 ई0 में उन्होंने यू0पी0 काँग्रेस समाजवादी कांफ्रेन्स की अध्यक्षता की तथा सन् 1949 और 1954 ई0 में उन्होंने समाजवादी दल के वार्षिक

सम्मेलन की अध्यक्षता भी की थी। वे सामाजिक व राजनीतिक स्वतन्त्रता के समर्थक थे। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में जोर देकर कहा था कि–"हम समाजवादियों को लेनिन की यह बात बराबर याद रखनी चाहिये कि सामाजिक स्वतन्त्रता के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता की लड़ाई बहुत जरूरी है।" [9] नरेन्द्रदेव ने समाजवादी आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया। उनकी भावना थी कि समाजवादियों को राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम में सम्मिलित होना चाहिए। यदि समाजवादियों ने अपने को देश में चल रहे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संघर्ष से अलग रखा तो उनका यह कार्य आत्महत्या के समान होगा। वे स्वाधीनता–संग्राम को सबसे अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण मानते थे। इसीलिए उन्होंने समाजवादियों को यह सलाह दी कि एक औपनिवेशिक देश के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता समाजवाद के मार्ग में एक अपरिहार्य अवस्था है। [10] नरेन्द्रदेव राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रीयता को आवश्यक तत्व मानते थे। उन्होंने कहा कि, ''उग्र राष्ट्रवाद विनाशकारी युद्धों का जनक है जबकि समाजवादी राष्ट्रवाद मानवीय स्वाधीनता का पोषक है।'' वे सहकारिता में विश्वास करते थे तथा समाजवाद में किसानों को समान भागीदार बनाने और सहकारिता का समर्थन करते रहे। उनका समाजवाद ऐसा था जिसमें एक साथ ही समानता, स्वतन्त्रता और भ्रातृत्व के सिद्धान्तों को साकार किया जाना था। वे केवल देश में ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर भी सहयोग, शान्ति और सुरक्षा के पोषक थे। उनके समाजवाद का मुख्य आधार निरपेक्ष राजनीति थी। [11] आचार्य नरेन्द्रदेव को भारत के समाजवादी आन्दोलन का मेरूदण्ड कहना ही उचित है। डॉ0 आर0ए0 प्रसाद उन्हें 'मानवतावादी समाजवादी' कहते हैं और वी0पी0 वर्मा उन्हें 'नैतिक समाजवादी' की संज्ञा देते है। नरेन्द्रदेव जी ने अपने समाजवाद को निम्न प्रकार परिभाषित किया है– आचार्य नरेन्द्रदेव के अनुसार, "समाजवाद का उद्देश्य एक वर्गविहीन समाज की स्थापना करना है जिसमें न कोई शोषक हो और न कोई शोषित; बल्कि समाज सहकारिता के आधार पर निर्मित व्यक्तियों का एक सामूहिक संगठन हो।" [12]

शिक्षा सम्बन्धित कार्यों में योगदानः आचार्य नरेन्द्रदेव 6 अक्टूबर, 1947 ई0 को लखनऊ विश्वविद्यालय तथा 5 दिसम्बर, 1951 ई0 को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति बने। वे लगभग चार वर्ष लखनऊ विश्वविद्यालय के तथा लगभग ढाई वर्ष बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहे। उनके उपकुलपतित्व कार्यकाल में विश्वविद्यालयों की स्थिति में पर्याप्त सुधार हुए। प्रो0 मुकुटबिहारी लाल के शब्दों में इसका मूल कारण "उनका आकर्षक व्यक्तित्व, विद्यार्थियों के प्रति उनकी व्यापक सद्भावना और सहानुभूति, उनकी योग्यता, उनका त्याग और न्यायप्रिय निष्पक्ष व्यवहार थे।" [13] चन्द्रमाल त्रिपाठी ने अपने एक लेख में लिखा हैः "एक विश्वविद्यालय के उपकुलपति के रूप में आचार्य जी का विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के समक्ष निष्पक्ष आदर्श चरित्र सदैव याद किया जाएगा। यद्यपि वे सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष थे परन्तु उन्होंने कभी भी विश्वविद्यालय परिसर में पार्टी की राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं रखा जबकि उनके उत्तराधिकारियों ने इस विषय पर ठीक इससे उल्टा कार्य किया।" [14]

विद्यार्थियों पर नरेन्द्रदेव जी के प्रभाव के अनेक कारण थे। वे सदा विधि और मर्यादाओं में रहकर ही अपने निर्णय करते थे। विशेष अधिकारों के वे विरूद्ध थे और बड़े से बड़े पदासीन लोगों की सिफारिशों को अमान्य कर देते थे। उन्होंने लखनऊ व बनारस दोनों स्थानों पर अपने दो हजार प्रतिमाह वेतन का चालीस प्रतिशत भाग निकालकर एक "छात्र कल्याण समिति" बनाई थी। इससे प्रतिवर्ष सैकड़ों छात्रों को छात्रवृत्ति और अन्य सहायता दी जाती थी। प्रो0 मुकुटबिहारी लाल के अनुसार सन् 1952–53 ई0 में इस कोष से 284 निर्धन छात्रों को सहायता दी गई, सन् 1953–54 ई0 में प्रधानमंत्री नेहरू और अनेक दानियों के सहयोग से 990 विद्यार्थी सहायता प्राप्त कर सके। विद्यार्थी उनका कितना सम्मान करते थे इस सम्बन्ध में प्रो0 मुकुटबिहारी लाल ने लिखा हैः शायद संसार के इतिहास में किसी उपकुलपति को भी विद्यार्थियों का इतना मान और प्रेम प्राप्त नहीं हुआ जितना आचार्य नरेन्द्रदेव को उस समय प्राप्त हुआ जब वे लखनऊ विश्वविद्यालय को छोड़कर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय गये थे। एक तरफ लखनऊ विश्वविद्यालय के विद्यार्थी उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं थे और समाचार सुनकर बहुत व्याकुल और अधीर थे, दूसरी तरफ बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थी उनके स्वागत के लिए बहुत ही उत्साहित थे। काशी आने पर विद्यार्थियों द्वारा उनका ऐसा स्वागत हुआ जैसा कि गाँधी जी के अतिरिक्त किसी दूसरे विद्वान या नेता का काशी में कभी नहीं हुआ।" [15] आचार्य जी के काम–काज और व्यवहार से अध्यापक संतुष्ट और प्रसन्न थे। दोनों विश्वविद्यालयों में पठन–पाठन का वातावरण बना। अनुसन्धान पर अधिक बल दिया जाने लगा। अध्यापक वर्ग में विश्वविद्यालय के प्रति उत्तरदायित्व की भावना जागृत हुई और भारतीय संस्कृति के प्रति आदर और गम्भीरता का भाव पैदा हुआ।

उच्च कोटि के शिक्षाशास्त्रीः आचार्य नरेन्द्रदेव व डॉ0 सम्पूर्णानन्द दो ऐसे समाजवादी चिन्तक हुए जो शिक्षक के रूप में उच्चकोटि के निष्ठावान शिक्षक और शिक्षाविदों में महान् शिक्षाविद् थे। जब सन् 1920 ई0 में गाँधी जी ने राष्ट्रीय शिक्षा को असहयोग आन्दोलन का विशिष्ट अंग बनाया, शिव प्रसाद गुप्त ने एक ट्रस्ट बनाकर काशी विद्यापीठ की स्थापना की। शिव प्रसाद गुप्त व अन्य राष्ट्रीय नेताओं का विचार था कि काशी विद्यापीठ द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा का कार्य तभी सुचारू रूप से चल सकता है जब राष्ट्रीय विचारों के शीलसम्पन्न विद्वान अध्यापन का कार्य करने को तैयार हों। जवाहरलाल नेहरू के आग्रह पर नरेन्द्रदेव विद्यापीठ में कार्य करने हेतु तैयार हो गये तथा "लगभग दस वर्ष तक वहीं रहकर वे राजनीति का कार्य और पठन–पाठन करते रहे तथा मुख्यतः विद्यापीठ के जरिये ही राष्ट्र की सेवा करते रहे।" [16]

आचार्य नरेन्द्रदेव ने अपने संस्मरण में लिखा है: "मेरे जीवन में सदा दो प्रवृत्तियाँ रही हैं– एक पढ़ने–लिखने की और दूसरी राजनीति की ओर। इन दोनों में संघर्ष रहता है और यदि दोनों की सुविधा एक साथ मिल जाए तो मुझे बड़ा परितोष रहता है और यह सुविधा मुझे विद्यापीठ में मिली। इसी कारण वह मेरे जीवन का सबसे अच्छा हिस्सा है जो विद्यापीठ की सेवा में व्यतीत हुआ।" विद्यापीठ में आते ही वह उप–प्रधानाचार्य बना दिये गये तथा सन् 1928 ई0 में डॉ0 भगवानदास जी द्वारा त्यागपत्र देने पर उनके स्थान पर प्रमुख बने। प्रारम्भ में कई वर्षों तक बिना वेतन कार्य किया, परन्तु पिता जी की मृत्यु के उपरान्त बड़े आग्रह पर निर्वाह मात्र वह डेढ़ सौ रूपये मासिक लेने लगे। इसका भी अधिकांश भाग असहाय विद्यार्थियों की सहायता तथा राजनीतिक कार्यों में लग जाता था। विद्यापीठ में जो काम उन्होंने किया उसे वह जीवन का 'स्थायी' कार्य मानते थे। वे कहा करते थे: "यही मेरी पूँजी है और इसी के आधार पर मेरा राजनीतिक कारोबार चलता है।" [17] बी0बी0 केसकर ने अपने लेख "आचार्य जी काशी विद्यापीठ" में लिखा है: "उनके गतिशील व्यक्तित्व तथा प्रदीप्त बौद्धिकता ने शीघ्र ही सारे संस्थान को प्रभावित किया और यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि सामान्यतः संस्थान पर उनकी मानसिक तथा बौद्धिक प्रतिभा की छाप थी।" [18] नरेन्द्रदेव के विद्यापीठ के सहयोगी वीरबल सिंह ने अपने लेख "आत्मत्याग और निस्पृहता के मूर्तिमान प्रतीक" में लिखा है: "आचार्य जी विद्यापीठ के प्राण थे। उन्हीं से सबको नेतृत्व मिलता था, प्रेरणा मिलती थी, स्फूर्ति मिलती थी, साहस और प्रोत्साहन मिलता था।" [19]

आचार्य नरेन्द्रदेव के प्रिय विशिष्ट विषय थे इंडोलोजी, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा आधुनिक भारत अर्थात् उन्नीसवीं व बीसवीं सदी का भारत। "वह जिस विषय को पढ़ते थे उसे वह इतना स्पष्ट, रोचक व सुगम बनाकर प्रस्तुत करते कि विद्यार्थी उसका अर्थ सरलता से ग्रहण कर सके। इतिहास को पढ़ाते समय प्रायः वह अतीत् की धुंधली परिस्थितियों और ऐतिहासिक पात्रों को जीवित वास्तविकताओं के रूप में प्रस्तुत कर देते थे। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास का सजीव चित्र वे एशिया के विभिन्न स्वतन्त्रता संघर्षों पर व्याख्यान देते समय वे राष्ट्रीय भावना से ऐसे अनुप्राणित हो जाते और उनकी वाणी में ऐसा चमत्कार पैदा हो जाता कि जिससे उनके श्रोताओं को ज्ञान के साथ–साथ राष्ट्र सेवा की सद्प्रेरणा भी प्राप्त होती।" [20] बी0 बी0 केसकर के शब्दों में: "संक्षिप्तता तथा संश्लेषण की प्रतिभा के कारण वे ऐतिहासिक घटनाओं की स्पष्ट तथा विशद् व्याख्या थोड़े से वाक्यों तथा इस तरह चुनिंदा शब्दों में धारा प्रवाह रूप में प्रस्तुत कर देते थे कि श्रोतागण मंत्रमुग्ध रह जाते थे।" [21] उनके एक पुराने विद्यार्थी कमलापति त्रिपाठी उनका स्मरण करते हुए लिखते हैं: "मैं इतिहास का विद्यार्थी होने के कारण काशी विद्यापीठ में उनका छात्र था। जब प्राचीन भारत का इतिहास पढ़ाते हुए वे आधुनिक भारत की समस्याओं का विवेचन करने लगते थे तो यह देखकर आश्चर्य होता था कि वह कितने विषयों के धुरन्धर विद्वान हैं। जब वह पढ़ाते थे तो लगता था कि सारा विषय आत्मसात् किये हुये हैं।" विद्यापीठ में रहकर पाली, प्राकृत और संस्कृत के मूल ग्रन्थों से उन्होंने बौद्ध धर्म और दर्शन का व्यापक अध्ययन किया तथा सामग्री इकट्ठी थी। इसके आधार पर उन्होंने हिन्दी में बौद्ध धर्म दर्शन नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। [22] बौद्ध धर्म और दर्शन पर व्याख्यान देते हुए वे छात्रों के समक्ष बुद्ध के भव्य व्यक्तित्व का चित्र खींचते, बौद्ध धर्म की विभिन्न शाखाओं, प्रशाखाओं का धार्मिक विश्लेषण करते और आर्य शान्तिदेव के प्रसिद्ध ग्रन्थ बोधिचर्यावतार के पदों को बहुत अनुप्राणित और आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करते थे।

नरेन्द्रदेव में प्रायः वे सब गुण भरपूर मात्रा में थे जो एक आदर्श अध्यापक में होने चाहिए। परन्तु आचार्य जी मात्र कोरे अध्यापक ही नहीं थे, वे कुशल प्रबन्धक भी थे तथा सिद्धान्तों पर अटल रहने वाले व्यक्ति थे। विद्यापीठ के अध्यक्ष के रूप में वह विद्यार्थियों के शिक्षण–व्यवस्था और कार्यालय के कार्यों की जाँच करते थे। आचार्य जी ने काशी विद्यापीठ को एक कुटुम्ब के रूप में परिणत कर रखा था जहाँ समस्त कर्मचारी एक कुटुम्ब के सदस्य थे। 26 सितम्बर, 1929 ई0 को महात्मा गाँधी ने काशी विद्यापीठ के दीक्षान्त समारोह की अध्यक्षता करते हुए कहा: ''नरेन्द्र तो नवरत्न हैं, जिन्हें पहले ही जान लेना चाहिए था।'' [23]

शिक्षा सुधार समितियों के साथ सम्बद्धता: समाजवादी चिन्तक आचार्य नरेन्द्रदेव का समय–समय पर शिक्षा सुधार समितियों के साथ भी सम्बन्ध रहा है। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अधीन संयुक्त प्रान्त में सन् 1937 ई0 के चुनाव के उपरान्त प्रथम बार काँग्रेस मंत्रिमण्डल बना। 28 मार्च, 1938 ई0 को प्रान्त की सरकार ने प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा पद्धति में सुधार हेतु दो समितियाँ गठित कीं। आचार्य नरेन्द्रदेव माध्यमिक शिक्षा समिति के अध्यक्ष थे। 13 अप्रैल, 1938 ई0 को ब्रिटिश सरकार ने घोषित किया कि यह दोनों समितियाँ एक संयुक्त उपसमिति की उप–समितियों की हैसियत से कार्य सम्पादित करेंगी। समाजवादी चिन्तक आचार्य नरेन्द्रदेव इस संयुक्त समिति के अध्यक्ष थे। इस समिति ने प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्रों में प्रान्त की शिक्षा प्रणाली के पुनर्गठन के सम्बन्ध में व्यापक रूप से जाँच करके 13 फरवरी, 1939 ई0 को प्रान्तीय सरकार को एक आख्या प्रस्तुत की। [24]

मई 1938 ई0 में आगरा, इलाहाबाद तथा लखनऊ के विश्वविद्यालयों के शिक्षाक्रम, प्रशासन व्यवस्था आदि की जाँच हेतु तत्कालिक शिक्षामंत्री डॉ0 सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई। कुछ समय उपरान्त इस समिति का कार्य दो उप–समितियों में विभाजित कर दिया गया। एक उप–समिति के अधीन लखनऊ तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालयों के कार्यों की जाँच हेतु गठित उप–समिति के अध्यक्ष नरेन्द्रदेव थे। आगरा विश्वविद्यालय के कार्यों की जाँच हेतु गठित उप–समिति के अध्यक्ष आचार्य जुगल किशोर थे। साथ

ही यह भी निश्चय किया गया की शिक्षामंत्री की अनुपस्थिति में आचार्य नरेन्द्रदेव ही संयुक्त समिति की अध्यक्षता करेंगे। विश्वयुद्ध में सहयोग के प्रश्न पर विवाद के परिणाम स्वरूप काँग्रेस मंत्रिमण्डल द्वारा त्यागपत्र देने के कारण समिति के कार्य में बाधा पड़ गई। दिसम्बर 1940 ई0 में समिति की आख्या के प्रथम दो भागों की रूपरेखा सदस्यों के मध्य वितरित की गई। परन्तु नरेन्द्रदेव सहित समिति सदस्यों के जेल में बन्द होने के परिणाम स्वरूप आख्या पर विचार न हो सका। जून 1941 ई0 में आख्या का तीसरा भाग भी विचार हेतु सदस्यों के पास भेजा गया। 16 जुलाई, 1941 ई0 को संयुक्त प्रान्त की सरकार ने समिति की संस्तुतियों को समाचार पत्रों में प्रकाशन हेतु भेजा तथा 19 जुलाई, 1941 ई0 को वह प्रान्तीय गजट में एक नोट के साथ प्रकाशित हुई कि समिति ने नियमानुसार अपनी किसी भी बैठक में इसे स्वीकार नहीं किया। [25] समिति के अध्यक्ष डॉ0 सम्पूर्णानन्द ने इस पर आपत्ति की तथा समिति के सचिव से बैठक बुलाने का आग्रह किया। परन्तु प्रान्तीय सरकार ने सूचित किया कि नवम्बर 1940 ई0 में ही समिति समाप्त कर दी गई थी अतः उसकी बैठक बुलाने का प्रश्न की नहीं उठता।

सन् 1951 ई0 में उत्तर प्रदेश सरकार ने माध्यमिक शिक्षा की प्रगति का मूल्यांकन करने हेतु एक समिति बनाई उसकी अध्यक्षता हेतु आचार्य नरेन्द्रदेव जी को चुना गया। इस समिति ने गत दस वर्षों की गतिविधियों की जाँच करके शैक्षिक पाठ्यक्रम में अनेक संशोधनों की सिफारिश की। इसी काल में आचार्य जी उत्तर प्रदेश सरकार की संस्कृत शिक्षा सुधार समिति और देवनागरी लिपि सुधार समिति की अध्यक्षता का भार भी वहन किया। 28 नवम्बर, 1953 ई0 को देवनागरी लिपि सुधार सम्मेलन में भाषण देते हुए डॉ0 सम्पूर्णानन्द ने कहाः "नरेन्द्रदेव कमेटी के सामने सम्यक् रूपेण नागरी लिपि के सुधार के प्रश्न पर विचार करने का लक्ष्य था और उसमें लीनाटाइपिंग, टेलीप्रिंटिंग भी आ जाती है और वह सभी प्रश्न आ जाते हैं, जो इस विषय से सम्बन्धित हैं।" साथ ही साथ डॉ0 सम्पूर्णानन्द ने सदस्यों से निवेदन किया कि "नरेन्द्रदेव कमेटी की जो सिफारिशें हैं उनको स्वीकार कर लेना चाहिए और जरूरत हो तो उनमें एक आध परिवर्तन कर दिया जाए।" [26]

19 फरवरी, 1956 ई0 को आचार्य जी का निधन हो गया। 20 फरवरी, 1956 ई0 को विधान सभा में अपना शोकोद्गार प्रकट करते हुए उत्तर प्रदेश के तत्कालिक मुख्यमंत्री डॉ0 सम्पूर्णानन्द ने कहा कि "विद्वता बेलिखी रह गई।" उन्होंने संस्कृत शिक्षा सुधार समिति व लिपि सुधार समिति की चर्चा करते हुए कहा कि "नागरी लिपि का जो नया रूप स्वीकार हुआ है। इसका श्रेय उस कमेटी की रिपोर्ट को जाता है जिसके अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्रदेव थे।" [27]

निष्कर्ष

आचार्य जी का समाज व शिक्षा में किया योगदान सराहनीय है। उन्होंने समाज व मानव की तन, मन, धन से निःस्वार्थ सेवा की तथा कभी अपने पद से बिचलित नहीं हुए, क्योंकि वह एक सच्चे व ईमानदार समाजवादी व राजनेता थे। उन्होंने अपने जीवन की समस्त भूमिकाओं को चाहे वो, राजनीतिज्ञ के रूप में हो, अध्यापक के रूप में हो, प्रधानाचार्य के रूप में हो, उपकुलपति के रूप में हो, प्रबन्धक के रूप में हो, शिक्षाशास्त्री के रूप में हो, अध्यक्ष के रूप में हो, सफलतापूर्वक निभाई है तथा जीवन के हर क्षेत्र में प्रसिद्धि पाई है। उनके योगदान को ये देश व समाज कभी नहीं भुला पायेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, विश्वनाथ प्रसादः आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तनः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2006–07, पृ0 585
2. लाल, प्रो0 मुकुट बिहारीः आचार्य नरेन्द्रदेव–युग और नेतृत्वः आचार्य नरेन्द्रदेव समाजवादी संस्थान, वाराणसी, 1970, पृ0 14
3. पाण्डेय, डॉ0 रामशकलः विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा–शास्त्रीः विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा–2, 2002 पृ0 365
4. वर्मा, विश्वनाथ प्रसादः पूर्वो, पृ0 588
5. देव, आचार्य नरेन्द्रः कामेमोरेशन वाल्यूमः सेन्टर ऑफ एप्लाईड पॉलिटिक्स, नई दिल्ली, 1978, पृ0 102
6. देव, आचार्य नरेन्द्रः कामेमोरेशन वाल्यूमः सेन्टर ऑफ एप्लाईड पॉलिटिक्स, नई दिल्ली, 1978, पृ0 104–113
7. वर्मा, विश्वनाथ प्रसादः पूर्वो, पृ0 420
8. लाल, प्रो0 मुकुट बिहारीः आचार्य नरेन्द्रदेव–युग और नेतृत्व, पृ0 363–65
9. लाल, प्रो0 मुकुट बिहारीः आचार्य नरेन्द्रदेव–युग और नेतृत्व, पृ0 361–63
10. वर्मा, विश्वनाथ प्रसादः पूर्वो, पृ0 533
11. अवस्थी, डॉ0 आनन्द प्रकाशः भारतीय राजनीतिक विचारकः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा–3, 2002, पृ0 601
12. कमल, डॉ के0 एल0ः समाजवादी चिन्तनः रिचर्स पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2005, पृ0 7
13. लाल, प्रो0 मुकुट बिहारीः आचार्य नरेन्द्रदेव–युग और नेतृत्व, वही, पृ0 320
14. त्रिपाठी, चन्द्रमालः "रेमीनिसेज ऑफ आचार्य नरेन्द्रदेव" आचार्य नरेन्द्रदेव बर्थ सेन्ट्रीनरी वाल्यूम (सम्पादक) प्रेम भसीन, मधुलिमये, डॉ0 हरिदेव शर्मा एवं विनोद प्रकाश सिंह, (रेडियन्ट पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1990, पृ0 221
15. लाल, प्रो0 मुकुट बिहारीः आचार्य नरेन्द्रदेव–युग और नेतृत्व, पृ0 320–321
16. लाल, प्रो0 मुकुट बिहारीः आचार्य नरेन्द्रदेव–युग और नेतृत्व, पृ0 60
17. देव, आचार्य नरेन्द्रः राष्ट्रीयता और समाजवादः नेशनल बुक ट्रस्ट, नईदिल्ली, इंडिया, 2002, पृ0 476–481
18. दीक्षित, जगदीश चन्द्रः (सम्पादित), आचार्य

नरेन्द्रदेव–युग और विचारः सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ0प्र0 लखनऊ, 1989, पृ0 294
19. प्रेम भसीन, मधुलिमये, डॉ0 हरिदेव शर्मा एवं विनोद प्रकाश सिंह (सम्पादित) आचार्य नरेन्द्रदेव जन्मशती ग्रन्थः रेडियन्ट पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1990, पृ0 109
20. लाल, प्रो0 मुकुट बिहारीः आचार्य नरेन्द्रदेव–युग और नेतृत्व, पृ0 63
21. दीक्षित, जगदीश चन्द्र, (सम्पादित): आचार्य नरेन्द्रदेव, पूर्वो, पृ0 296
22. बौद्ध धर्म–दर्शन का प्रकाशन नरेन्द्रदेव के मरणोपरान्त हुआ। प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1956
23. उद्धतः दीक्षित, जगदीश चन्द्र, आचार्य नरेन्द्रदेव, पूर्वो, पृ0 21
24. सम्पूर्ण रिपोर्ट हेतु देखेंः दत्त, यू0 सी0ः एजुकेशनल सर्वे ऑफ उत्तर प्रदेशः दि इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1960, पृ0 176–189
25. संयुक्त प्रान्त का गजट, इलाहाबाद, 19 जुलाई, 1941
26. सम्पूर्णानन्द डॉ0ः समिधाः सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ0प्र0 लखनऊ, 1991, पृ0 91–95
27. उद्धतः दीक्षित, जगदीश चन्द्र, आचार्य नरेन्द्रदेव, पूर्वो, पृ0 342।